जर्मनी की विदेश नीति: मूल तत्व

द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात सर्वाधिक बरबाद देश जर्मनी और जापान ही था। जर्मनी के पूर्वी हिस्से में साम्यवादी रूस की सेनाएं मौजूद थीं और जर्मनी के विभाजन का खतरा था। जो पूर्वी जर्मनी के रूप में हुआ भी। इसके अलावा जर्जर आर्थिक स्थिति, यूरोप में सर्वत्र घृणा और नफरत का माहौल, इन सबसे उबरना और एक स्वतंत्र विदेश नीति का पालन जर्मनी के लिए आसान नहीं था। लेकिन जर्मनी ने जल्दी ही विश्व व्यवस्था में अपना स्थान बना लिया। जर्मनी की विदेश नीति के मूल तत्वों या विशेषताओं का विश्लेषण दो बिंदुओं में किया जा सकता है।

1- शीत युद्ध काल में जर्मनी की विदेश नीति —

फरवरी 1945 के याल्टा सम्मेलन में स्टालिन, रूजवेल्ट, और चर्चिल के बीच जर्मनी पर संयुक्त प्रभाव पर सहमति हो गयी थी। लेकिन शीघ्र ही यह पूर्वी और पश्चिमी जर्मनी के रूप में विभाजित हो गया। पश्चिमी जर्मनी अमेरिका के नेतृत्व में पूंजीवादी देश बना और पूर्वी जर्मनी सोवियत नेतृत्व में साम्यवादी।

1 जर्मन अर्थव्यवस्था का पुनर्निर्माण और ट्रूमैन योजना —

पश्चिमी जर्मनी में नया मार्क जारी किया गया। USA और UK जर्मनी और पश्चिमी यूरोप को आर्थिक रूप से सशक्त बनाना चाहते थे। अमेरिकी राष्ट्रपति ट्रूमैन ने यूरोप को भारी आर्थिक सहायता दी। ट्रूमैन-मार्शल प्लान के तहत 13 अरब डॉलर (जो 2020 में 204 अरब डालर से अधिक होता है) की सहायता यूरोप को, अमेरिका ने दी। यह सहायता आर्थिक विकास व पुनर्निर्माण के लिए थी। 16 देशों में से ब्रिटेन के बाद सबसे बड़ी सहायता जर्मनी और फ्रांस को ही मिली। परिणामतः पश्चिम जर्मनी शीघ्र ही आर्थिक विकास की राह पर चल पड़ा।

2- पूंजीवादी ध्रुव में शामिल होना — 1948 तक

स्टालिन ने पूर्वी यूरोप में साम्यवादी सरकारें बड़ी मात्रा में स्थापित कर दी थीं। 1948 तक यूरोप लगभग स्पष्टतः साम्यवादी और पूंजीवाद में विभाजित हो गया था। अतः अमेरिकी सहायता पर आश्रित प. जर्मनी स्वाभाविक रूप से पूंजीवादी समूह में स्थापित हो गया।

3 1947-1953 पूंजीवादी नेतृत्व में सुदृढ़ीकरण — 1953 तक यूनान में गृह युद्ध, चीन में साम्यवादी क्रांति, तथा →

कोरिया संकट में जर्मनी पूंजीवादी खेमे के साथ रहा। तथा अपने आर्थिक सुदृढ़ीकरण में लगा रहा। लगभग सम्पूर्ण पश्चिमी यूरोप की यही स्थिति थी।

4. 1953-1962 — शीतयुद्ध का प्रसार और अमेरिकी खेमे के साथ सहयोग → अमेरिका ने सोवियत संघ को घेरने की नीति 1948 से ही प्रारम्भ कर दी थी। 1949 में NATO की स्थापना में जर्मनी भी शामिल था। 1953 में स्टालिन की मौत के बाद कुछ दिनों तक ख्रुश्चेव ने सहयोग की नीति अपनायी। लेकिन फिर से आस्ट्रिया, हंगरी, बर्लिन दीवार, और क्यूबा संकट जैसे विवाद आए जिसने शीतयुद्ध बढ़ाया। इसमें पश्चिम जर्मनी पूंजीवादी खेमे के साथ रहा।

5. 1962-1989 — शीत युद्ध का प्रसार और जर्मनी — इस अवधि में सोवियत खेमे वारसा पैक्ट और पूंजीवादी खेमे में SENTO, SEATO जैसे नवीन सैन्य गठबंधन बने। शीतयुद्ध का प्रसार यूरोप के बाहर पश्चिमी एशिया और एशिया प्रशांत क्षेत्रों में हो गया लेकिन जर्मनी इसमें शामिल नहीं हुआ।

6. पश्चिम के साथ आर्थिक सहयोग व ध्रुववाद एवं स्वतंत्र विदेशनीति — जर्मनी ने NATO की सामूहिक सुरक्षा के अतिरिक्त अन्य किसी सैन्य गठबंधन में शिरकत नहीं की तथा अपनी एक स्वतंत्र नीति लेकर चला। यद्यपि यह स्वतंत्रता केवल सैन्य मामलों में थी। कूटनीतिक मामलों में जर्मनी अभिन्न रूप से पूंजीवादी खेमे के साथ था और लगभग अन्तर्राष्ट्रीय मामलों, विवादों में जर्मनी का सहयोग अमेरिकी पक्ष के साथ ही रहा।

7. 1990 के बाद शीत युद्धोत्तर विश्व और जर्मनी — 1990 के बाद शीतयुद्धोत्तर विश्व में भी जर्मनी की विदेश नीति में कोई आमूलचूल परिवर्तन नहीं हुआ है। यह अर्थात् पश्चिमी सहयोग किन्तु सैनिक हस्तक्षेप न करने की नीति पर कायम रहा। खाड़ी युद्ध 1991 और 2001 में 9/11 के बाद अमेरिकी नेतृत्व में अफगान संकट या आतंकवाद के विरुद्ध अभियान में जर्मनी ने अमेरिकी गुट को कूटनीतिक और आर्थिक सहभागिता तो दी लेकिन कोई सैनिक सहभागिता नहीं की जैसा कि फ्रांस और ब्रिटेन ने किया। एंजेला मार्केल के रूप में जर्मनी →

को एक सशक्त नेतृत्व मिला। जिसके कारण जर्मनी की आर्थिक-मजबूती और उदारवादी चरित्र न केवल बचा रहा बल्कि वह और अधिक मजबूत हुआ।